THE STUDY

An Institute for IAS

आधुनिक भारत का इतिहास

मणिकांत सिंह

विषय सूची

क्र. सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	काल निर्धारण एवं आधुनिक भारत का इतिहास-लेखन	01
2.	18वीं सदी का विवाद	05
3.	यूरोपीय व्यापार का उद्भव एवं विकास	08
4.	ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रथम चरणः वाणिज्यिक चरण (1757-1813 ई.)	27
5.	ब्रिटिश उपनिवेशवाद का द्वितीय चरणः औद्योगिक चरण (1813-1858 ई.)	54
6.	ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तृतीय चरणः वित्तीय चरण (1858 तथा उसके पश्चात्)	110
7.	भारतीय राष्ट्रवाद	123
8.	जनजातीय एवं किसान आन्दोलन	131
9.	1857 का महाविद्रोह	152
10.	समाज तथा धर्म सुधार आन्दोलन	161
11.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	174
12.	1858 तथा 1935 के बीच महत्वपूर्ण संवैधानिक घटनाक्रम	204
13.	गाँधी का उदय	213
14.	भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का उदय	261
15.	साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन	268
16.	स्वातंत्र्योत्तर भारत (1947-1964 ई.)	274

अध्याय 04

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रथम चरण: वाणिज्यिक चरण (1757-1813 ई.)

ब्रिटिश के आगमन के साथ भारत में उपनिवेशवाद की प्रक्रिया शुरू हुई। वैसे उपनिवेशवाद की कुछ सामान्य एवं मूलभूत विशेषताएँ होती हैं उदाहरणत: उपनिवेशवादी सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि उपनिवेश के हित मातृदेशों के हितों के अधीन हो। उपनिवेशवाद के मूल तत्व आर्थिक शोषण में निहित है परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि एक उपनिवेश पर राजनीतिक कब्जा जमाए रखना महत्वपूर्ण नहीं है। उपनिवेशवाद की प्रकृति मुख्यत: इसके (आर्थिक शोषण) के विभिन्न तरीकों से जानी जाती है। उपनिवेशवाद का अध्ययन उपनिवेशवादी नीति के बजाय एक ढाँचे (Structure) के रूप में अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। अब तक उपनिवेशवाद का अध्ययन उपनिवेशवादी नीति अथवा विचारों और व्यक्तियों के अभियान एवं प्रगति के रूप में किया जाता रहा है। विचार और व्यक्तित्व उपनिवेशवादी नीति को काफी प्रभावित करते रहे हैं परन्तु उपनिवेशवाद के अध्ययन का यह ठोस आधार नहीं है, क्योंकि नीति में परिवर्तन आ सकता है एवं समय-समय पर आया भी हैं परन्तु उपनिवेशवादी ढाँचा स्थिर रहा।

उपनिवेशवाद का अध्ययन अंतर्विरोधों की श्रृंखला (Series of Contradictions) के रूप में किया जा सकता है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत में कई तरह के अन्तर्विरोधों को जन्म दिया जिन्हें 'विकास एवं पिछड़ेपन का अन्तर्विरोध' कहा जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उपनिवेशवाद एक ऐसी प्रक्रिया थी जो यूरोप के उन महानगरों द्वारा आरंभ की गई जहाँ व्यापारिक या औद्योगिक क्रांति पहले हुई। ब्रिटेन के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के बदलते हुए प्रतिमानों ने भारत में ब्रिटिश शासन के स्वरूप के साथ उपनिवेशवाद एवं इसकी नीतियों में भी परिवर्तन किया। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के स्वरूप में परिवर्तन के मुख्य कारण ब्रिटिश समाज में परिवर्तन थे और इन परिवर्तनों ने काफी हद तक उपनिवेशवादी नीति को प्रभावित किया।

सुविधा एवं स्वरूप की दृष्टि से उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण निर्धारित किए गए हैं। उपनिवेशवाद के बदलते हुए चरण में इसका आर्थिक ढाँचा भी बदलता चला गया। तदनुरूप यह एक नया वैचारिक आधार तलाशने लगा।

उपनिवेशवाद का प्रथम चरण : वाणिज्यिक चरण (1757-1813)

उद्देश्य : अधिकतम रूप में राजस्व का संग्रह करना ताकि उसका एक बड़ा भाग भारतीय व्यापार में निवेशित किया जा सके।

राजनीतिक नीति	प्रशासनिक नीति	आर्थिक नीति	सामाजिक नीति	सांस्कृतिक नीति
घेरे की नीति अर्थात् शत्रु राज्यों को मित्र राज्यों से घेरे रखना।	कुछ परिवर्तनों के साथ मुगल प्रशासनिक ढांचे को बनाए रखना।	हस्तशिल्प उद्योगों का पतन तथा धन की निकासी।	भारत के प्रचलित सामाजिक ढांचे में बदलाव का प्रयास नहीं।	प्राच्यवाद पर बल दिया जाना।

पूँजीवाद व उपनिवेशवाद में संबंध

मातृदेश या महानगरीय राज्य में पूँजीवाद होता है, वह उपनिवेश में उपनिवेशवाद कहलाता है क्योंकि मातृदेश के पूँजीवादी हित के अनुकूल उपनिवेश का उपयोग किया जाता है। जैसे-जब ब्रिटेन में वाणिज्यिक पूँजीवाद था, तो भारत में वाणिज्यिक चरण का उपनिवेशवाद था। इस चरण में ब्रिटेन की आवश्यकता थी प्रचुर मात्रा में भारत से व्यापारिक वस्तुयें प्राप्त करना और भारतीय राजस्व से ही उन वस्तुओं को खरीदना। इस काल में भारत के संदर्भ में ब्रिटिश कम्पनी ने उसी प्रकार की नीति अपनायी। फिर आगे जब ब्रिटेन में औद्योगिक पूँजीवाद आया तो भारत में औद्योगिक उपनिवेशवाद का उद्भव हुआ।

इस काल में ब्रिटेन का लक्ष्य भारतीय बाजार का उपयोग ब्रिटिश वस्तुओं के बाजार के रूप में करना व बड़ी मात्रा में कच्चा माल प्राप्त करना था। इसलिये ब्रिटिश सरकार ने भारत के संदर्भ में उसी प्रकार की नीति अपनाते हुये भारत को कच्चे माल के निर्यातक व विनिर्मित वस्तुओं के आयातक के रूप में बदल दिया।

उसी तरह 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन में वित्तीय पूँजीवाद का उद्भव हुआ तो भारत में वित्तीय चरण के उपनिवेशवाद पर बल दिया गया और भारत को ब्रिटिश निवेश के लिये खोल दिया गया।

इस प्रकार ब्रिटिश के बदलते हुये आर्थिक हित के अनुकूल भारत का आर्थिक शोषण भी बदलता रहा तथा उसी के अनुकूल भारत के सन्दर्भ में ब्रिटिश राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक नीतियाँ भी बदलती रही।

व्यापारिक पूँजीवाद (Commercial Capitalism)

(1740-1813) ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक कंपनी के रूप में भारत में आई। प्रारंभ में उसे बहुत ही कठिनाई का सामना करना पड़ा। एक तरफ, शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का नियंत्रण एवं दूसरी तरफ, अपने देश की सरकार का दबाव। वह भारत में जो वस्तुएँ खरीदती उनके लिए उसे कीमती धातु देना पड़ता था क्योंकि भारतीय वस्तुओं के बदले देने के लिए उसके पास कुछ नहीं था। स्वाभाविक रूप से वाणिज्यवाद के उस युग में ब्रिटिश सरकार को इस बात पर आपत्ति थी। फिर कंपनी भारत में अपनी सेनाएँ रखने लगी, किले बनाए एवं युद्ध सामग्रियाँ खरीदनी शुरू की। इन सब के लिए अत्यधिक मात्रा में धन की जरूरत थी। वैसे वह भारत में कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास जैसे शहरों में चुँगी लगाकर कुछ राजस्व प्राप्त करने था किंतु वह पर्याप्त नहीं था।

पहली बार कर्नाटक पर, ब्रिटिश कंपनी का नियंत्रण हुआ। फिर 1757 तक प्लासी की लड़ाई के पश्चात् बंगाल पर कंपनी का नियंत्रण स्थापित हो गया। 1765 ई. में उसे बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई। फिर बंगाल के भू-राजस्व पर उसका प्रत्यक्ष नियंत्रण हो गया। अब वह बंगाल के राजस्व से वस्तुओं की खरीददारी कर उनका निर्यात करने लगी। यह 'निवेश' कहा जाता था। माना जाता है कि प्रारंभिक वर्षों में कंपनी ने बंगाल के भू-राजस्व का लगभग 33 प्रतिशत वस्तुओं के रूप में इंग्लैण्ड भेज दिया।

बंगाल पर कंपनी के नियंत्रण के बाद बंगाल के आर्थिक शोषण की प्रक्रिया शुरू हुई। अब वह भारतीय हस्तशिल्प उद्योग के शिल्पियों को प्रताड़ित करने लगी। वह उन्हें महंगी दर पर कच्चे माल देती थी एवं सस्ती दर पर तैयार माल लेती थी। धीरे-धीरे भारतीय हस्तशिल्प उद्योग का पतन होने लगा। किंतु इस चरण में कंपनी की मुख्य चिंता भू-राजस्व की वसूली ही थी। कंपनी की नीति वाणिज्यवादी हितों से परिचालित हो रही थी। कंपनी ने भारत के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने की कोशिश नहीं की। अत: भारतीय प्रशासन का ढ़ाँचा पुराना ही रहा। भारतीय शोषण के परिणामस्वरूप ही कंपनी ने अतिरिक्त पूँजी इकठ्ठी की। आगे औद्योगिक क्रांति के प्रारंभिक वर्षों में इंग्लैण्ड में भारत से प्राप्त पूँजी ने भी अपनी भूमिका निभाई।

राजनीतिक नीति

मैसूर

बंगाल विजय के उपरांत ब्रिटिश ने मैसूर पर ध्यान केन्द्रित किया क्योंकि जब ब्रिटिश कंपनी कर्नाटक युद्ध में व्यस्त थी तथा बंगाल में अपने प्रभाव का विस्तार कर रही थी, उस समय मैसूर राज्य हैदर अली के नेतृत्व में पर्याप्त शक्ति अर्जित करने में कामयाब रहा था। हैदर अली ने अपना जीवन सेना में एक घुड़सवार के रूप में प्रारंभ किया था और फिर प्रगति करते हुए वास्तविक शासक बन बैठा था। सत्तासीन होने के उपरांत उसने मैसूर राज्य को शक्तिशाली बनाने का काम प्रारंभ किया। इसके लिए उसने यूरोपीय पद्धति पर सेना का पुनर्गठन किया। उसने अपने नेतृत्व में सैन्य टुकड़ियों बनाई तथा उन्हें आधुनिक बनाने के लिए फ्रांसीसी अधिकारी का भी सहारा लिया। उसने तोपखाने के निर्माण तथा पैदल सैनिकों की टुकड़ियों पर अपनी रणनीति का निर्माण किया। इस सेना तथा रणनीति का प्रयोग कर उसने दक्षिण की ओर प्रसार की नीति जारी रखी। मैसूर के उत्थान ने दक्षिण भारत के राजनीतिक संतुलन को अव्यवस्थित कर दिया। इस समय दक्षिण में निजाम तथा मराठा शक्तियां भी मौजूद थीं जो विस्तारवादी प्रक्रिया में एक-दूसरे से टकराती रहती थीं। बहरहाल मैसूर के उदय ने कर्नाटक, निजाम, मराठा आदि शक्तियों के विस्तारवादी कार्यक्रम में बाधा पहुंचाई। अत: निजाम तथा मराठों ने मैसूर के विरुद्ध एक साझे मोर्चे का निर्माण किया जिसमें ब्रिटिश कंपनी की सैन्य शक्ति की मदद लेने के विकल्प को भी स्थान दिया गया था। ब्रिटिश कंपनी के लिए यह दक्षिणी भारतीय राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का सुनहरा मौका था।

ब्रिटिश में मैसूर विजय की आतुरता उसके महत्वपूर्ण आर्थिक हित से परिचालित हो रही थी। दरअसल, उस मालाबार तट पर मैसूर का अधिकार था जहाँ से काली मिर्च तथा अन्य मसाले का व्यापार होता था। साथ ही मैसूर से मद्रास के व्यापार तथा उसके उपजाऊ

अध्याय 10

समाज तथा धर्म सुधार आंदोलन

औपनिवेशिक संबंधों का मूल आधार आर्थिक होता है, किंतु औपनिवेशिक शोषण के क्रम में मातृदेश के द्वारा उपनिवेश की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में भी परिवर्तन लाया जाता है। भारत में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत कुछ ऐसा ही हुआ। 19वीं सदी के आरंभिक दशकों में औद्योगिक क्रांति का प्रभाव भारतीय समाज पर देखा गया। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति की मांग थी कि भारत का विकास ब्रिटिश वस्तुओं के बाजार के रूप में किया जाए। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारत का आंशिक आधुनिकीकरण आवश्यक था। अत: भारत में अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया तथा समाज सुधार के लिए कानून बनाये गये। फिर यही वह काल है जब उदावादी, उपयोगितावाद विचारधारा तथा ईसाई मानवतावाद भारत के संदर्भ में ब्रिटिश आधिकारिक दृष्टिकोण को प्रभावित करने लगा।

19वीं सदी में समाज तथा धर्म सुधार आंदोलन को प्रेरित करने वाले कारक

1. प्राच्यवादियों का प्रभाव : प्राच्यवादियों ने भारतीय संस्कृति का अन्वेषण किया तथा भारतीय अतीत का गुणगान किया फिर भारत में अतीत की गरिमा पर बल देकर उन्होंने भारतीयों का ध्यान अपनी संस्कृति एवं परंपरा की ओर आकर्षित किया।
2. अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के परिणामस्वरूप पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा से संपर्क।
3. ब्रिटिश के द्वारा समाज सुधार के लिए कानून बनाया जाना।
4. ईसाई मिशनरियों का योगदान।
5. समाचार पत्रों एवं आवागमन के साधनों का विकास

समाज तथा धर्मसुधार आंदोलन की पृष्ठभूमि

जैसाकि हम जानते हैं कि 19वीं सदी के आरंभिक दशकों में ब्रिटिश आपैनिवेशिक हित में भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक रूपातंरण के लिए कदम उठाये गये। इस क्रम में अंग्रेजी शिक्षा को भारत में लागू किया गया। वस्तुत: भारत में ब्रिटिश ने लैटिन अमेरिका और अफ्रीका की तरह देशी संस्कृति को विस्थापित करने का प्रयास नहीं किया अपितु उसमें हस्तक्षेप कर परिवर्तन लाना चाहा तथा उस पर अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। अत: भारत में अंग्रेजी शिक्षा लागू करने तथा समाज सुधार से संबंधित विधि-निर्माण करने का यह भी एक कारण था। इसका स्वाभाविक परिणाम था भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त एक बुद्धिजीवी वर्ग का उत्पन्न होना जो अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा से परिचित हो सका। इन बुद्धिजीवियों ने पाश्चात्य जीवन से निकटता महसूस की। वे ब्रिटिश मॉडल के प्रति आकर्षित हुए एवं उसकी श्रेष्ठता में विश्वास जताया। उधर ब्रिटिश भारतीयों के उद्धारक के रूप में अपनी छवि बनाये रखना चाहते थे। अत: उन्हे भारतीय बुद्धिजीवियों के समर्थन की जरूरत थी। फिर ब्रिटिश भारतीयों के उद्धार के नाम पर भारत में पश्चिम की औपनिवेशिक संस्कृति को लादने या थोपने के लिए भी तत्पर थे। अत: शीघ्र ही अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय बुद्धिजीवी ब्रिटिश सांस्कृतिक नीति के इस विरोधाभास को समझ गये। एक तरफ जहाँ उन्होंने पश्चिम की उदारवादी विचारधारा तथा भारत में स्थापित ब्रिटिश संस्थाओं के बीच के विराधाभास को समझा, वहीं वे इस निष्कर्ष पर भी पहुँच गये कि पश्चिमी समाज में समानता के स्तर पर उन्हे प्रवेश नहीं मिलेगा। यही वजह है कि पाश्चात्य मॉडल के प्रभाव के साथ-साथ उन्होंने पाश्चात्य मॉडल के विरूद्ध एक प्रकार की प्रतिक्रिया भी दिखायी। समाज तथा धर्म सुधार आंदोलन में उपर्युक्त दोनों तत्व एक साथ मिलते हैं। दूसरे शब्दों में एक तरफ जहाँ भारतीय बुद्धिजीवियों ने पाश्चात्य मॉडल से प्रेरणा ली, वहीं दूसरी तरफ, औपनिवेशिक संस्कृति का विरोध किया। उसी प्रकार जहाँ एक तरफ उन्होनें देशी परम्परा एवं संस्कृति के रचनात्मक तत्वों को ग्रहण किया, वही दूसरी तरफ, उन्होंने अतीत एवं परम्परा में निहित प्रतिगामी तत्वों पर चोट भी की। इस प्रकार पाश्चात्य तथा परम्परागत भारतीय मॉडल इन दोनों के बीच एक 'रचनात्मक सामंजस्य' लाकर उन्होंने वैकल्पिक आधुनिकीकरण के लिए प्रयास किया।

उस काल के बुद्धिजीवियों के द्वारा इस वैकल्पिक आधुनिकता की खोज का निरंतर प्रयास दिखता है उदाहरण के लिए, बंगाल के बुद्धिजीवी अक्षय कुमार दत्त ने तत्वबोधिनी पत्रिका में पाश्चात्य तत्व

अध्याय 11

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना दिसम्बर, 1885 में हुई। इसका प्रथम अधिवेशन दिसम्बर, 1885 में ही बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में हुआ जिसमें संपूर्ण भारत के 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अखिल भारतीय स्तर पर यह भारतीय राष्ट्रवाद की पहली सुनियोजित अभिव्यक्ति थी।

कांग्रेस की स्थापना के काल से ही इसकी स्थापना के उद्देश्य से संबंधित कुछ मिथक प्रचलित रहे हैं। कांग्रेस की स्थापना के पीछे सबसे दमदार मिथक 'सुरक्षा वॉल्व' के सिद्धांत का है। विलियम वेडरवर्न के कथन को आधार बनाकर 1916 में उग्रवादी नेता लाला लाजपत राय ने यंग इंडिया में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस मिथक के अनुसार ए.ओ. ह्यूम तथा उनके साथियों ने तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन के निर्देश, मार्गदर्शन तथा सलाह पर इस संगठन को जन्म दिया ताकि उस समय भारतीय जनता में पनपते-बढ़ते असंतोष को हिंसा के ज्वालामुखी के रूप में बदलने और फूटने से रोका जा सके और असंतोष की वाष्प को बिना किसी खतरे के बाहर निकलने के लिए सुरक्षित, सौम्य, शांतिपूर्ण और संवैधानिक निकास या सुरक्षा वॉल्व उपलब्ध कराया जा सके। सुरक्षा वॉल्व के इस सिद्धांत को आगे सभी कांग्रेस विरोधी पार्टी ने उसकी आलोचना का आधार बनाया उदाहरण के लिए वामपंथी नेता रजनी पाम दत्त ने इंडिया टुडे में साबित करने की कोशिश की है कि कांग्रेस की स्थापना ही दोषपूर्ण थी। स्थापना के समय से ही इसके दो रूख थे। एक पक्ष, तो जनांदोलन के खतरे के खिलाफ साम्राज्यवाद के सहयोग का था और दूसरा पक्ष, राष्ट्रीय संघर्ष में जनता की अगुवाई का था। प्रारंभ से ही कांग्रेसी नेता ब्रिटिशों के खिलाफ संघर्षरत रहते हुए और भारत के लोगों का नेतृत्व करने की इच्छा रखते हुए भी इस बात के प्रति आशंकित था कि कहीं आंदोलन बहुत तेजी से आगे न बढ़ जाये क्योंकि इससे उनके द्वारा भोगी जाने वाली सुविधाओं के नष्ट होने का खतरा था।

1939 ई० में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संघ चालक एम. एस. गोलवलकर ने भी कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता पर प्रहार करने के लिए तथा उसे गैर राष्ट्रवादी साबित करने के लिए सुरक्षा वाल्व के इस मिथक का उपयोग किया था। उन्होंने अपने पत्रिका **'वी'** में कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित धर्मनिरपेक्षतावाद को गैर भारतीय माना। उन्होंने कहा कि हिंदुओं के अंदर विराष्ट्रीयकरण की भावना भरने के लिए कांग्रेस की नीतियाँ जिम्मेवार थीं। उन्होंने यह भी स्थापित करने की कोशिश की है कि कांग्रेस की स्थापना में ही खामी निहित थी इसलिए कांग्रेस गैर भारतीय संस्था ही बनी रही।

किन्तु, कांग्रेस की स्थापना के संदर्भ में सेफ्टी वॉल्व का सिद्धांत तर्कसंगत नहीं जान पड़ता है। क्योंकि इस व्याख्या को स्वीकार करने का अर्थ है- कांग्रेस जैसी संस्था की स्थापना को कुछ व्यक्तियों के षड्यंत्र का परिणाम मान लेना था, परन्तु हम जानते हैं कि राष्ट्रवाद के उछाह में सामान्य जन की भी अपनी भागीदारी होती है। कोई भी आन्दोलन तभी परिपक्व होता है जब उसमें निचले स्तर की भागीदारी ऊपर के स्तर के नेतृत्व से जुड़ जाती है। ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद से ही विभिन्न भारतीय वर्गों का असंतोष समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त होता रहा है। किसान विद्रोह, जनजातीय विद्रोह तथा जन असंतोष की ही अभिव्यक्ति थे। किन्तु इन विद्रोहों में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति नहीं हो पाई थी। पाश्चात्य शिक्षा तथा सामाजिक धार्मिक आन्दोलन ने भारत में राष्ट्रवाद के उदय की पीठिका तैयार कर दी।

कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही भारतीयों में राष्ट्रवाद का उभार स्पष्ट दिखाई देने लगा था। जिसकी अभिव्यक्ति स्थापित हुए विभिन्न राजनीतिक संगठनों में देखी जा सकती है। आधुनिक भारत में प्रथम राजनीतिक संगठन 1838 में स्थापित लैंड होल्डर्स सोसाइटी को माना जाता है। हालाँकि इसका लक्ष्य सीमित था तथा यह बंगाल बिहार-उड़ीसा के जमींदारों के हितों की सुरक्षा के लिए काम करता था। 1843 ई० में ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी की स्थापना हुई। 1851 ई० में दोनों संस्थाओं का विलय हो गया तथा अब एक नई संस्था ब्रिटिश इण्डिया एसोशिएशन अस्तित्व में आई। 1866 ई० में दादा भाई नोरोजी ने 'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना की। उनका उद्देश्य था इस संस्था के द्वारा ब्रिटिश जनता को भारतीय समस्या से अवगत कराना। 1867 ई० में एम.जी. राणाडे ने पूना सार्वजनिक सभा

की स्थापना की। 1876 में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी तथा आनंद मोहन बोस द्वारा इण्डिया एसोसिएशन की स्थापना की गई। प्रभाव एवं प्रसार की दृष्टि से यह प्रथम अखिल भारतीय संस्था थी। इसके द्वारा कुछ अखिल भारतीय मुद्दों को उभारा गया यथा, सिविल सेवा की उम्र में वृद्धि, आर्म्स एक्ट एवं वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट रद्द करना आदि। इस संस्था के द्वारा उपरोक्त मुद्दों का आधार पर अखिल भारतीय स्तर पर जनमत को संगठित करने की कोशिश की गई।

अब तक इन संस्थाओं के गठन की वजह से भारतीयों में काफी आत्म-विश्वास आ चुका था। इससे पहले के 10 वर्षों के दौरान तमाम आन्दोलनों से उनमें लड़ाकू प्रवृत्ति आ चुकी थी। 1875 के बाद से वस्त्र आयात शुल्क को लेकर लगातार आन्दोलन चलता रहा। यह आन्दोलन भारतीय वस्त्र उद्योग के हित में आयात शुल्क को बरकरार रखने के लिये चलाया जा रहा था। 1877-78 के दौरान सरकारी नौकरियों के भारतीयकरण के लिए आन्दोलन चला। सरकार ने जब वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट के माध्यम से प्रेस को नियंत्रित करना चाहा तो प्रेस ने आन्दोलन छेड़ दिया। सन् 1881-82 में बागान मजदूर तथा स्वदेशी आव्रजन अधिनियम के खिलाफ आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 1883 में इल्बर्ट बिल के समर्थन में आन्दोलन खड़ा हो गया। भारत तथा ब्रिटेन में एक साथ आन्दोलन चलाने के उद्देश्य से 1883 में देशव्यापी स्तर पर धन इकट्ठा करने का काम शुरू हुआ। 1885 में भारतीयों ने स्वैच्छिक संगठनों में भागीदारी के लिए आन्दोलन छेड़ा और उसके बाद अंग्रेज मतदाताओं से अपील की, कि वे उसी उम्मीदवार को वोट दें जो भारतीय हितों के रक्षक हों।

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस की स्थापना, 1885 से पहले के वर्षों से देश में चल रहे राजनीतिक गतिविधि तथा कार्यकलाप की तार्किक परिणति थी। उस समय तक देश की राजनीतिक स्थिति ऐसी बन चुकी थी कि यह जरूरी हो गया था कि कुछ बुनियादी काम और लक्ष्य तय किये जायें और उनके लिए संघर्ष शुरू किया जायें। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए यह जरूरी था कि देश के बुद्धिजीवी एक मंच पर आएँ। अखिल भारतीय आधार पर गठित कोई एक संगठन ही, ऐसा मंच प्रदान कर सकता था। ये सभी लक्ष्य एक दूसरे से जुड़े थे और एक दूसरे पर आधारित थे और इन्हें तभी हासिल किया जा सकता था जब राष्ट्रीय स्तर पर कोई कोशिश शुरू की जाती। अतः 1885 में कांग्रेस की स्थापना इस विकास की तार्किक परिणित थी। अतः मात्र सेफ्टी वॉल्व के सिद्धांत के द्वारा इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है।

सेफ्टी वॉल्व के सिद्धांत के विरोध में एक विद्वान ने तड़ित चालक सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया गया है। इसमें यह साबित करने की कोशिश की गई है कि वास्तव में ए.ओ. ह्यूम ने ब्रिटिश हित में कांग्रेस का उपयोग नहीं किया बल्कि भारतीय बुद्धिजीवियों ने ही राष्ट्रीय आन्दोलन के हित में ह्यूम का उपयोग किया। भारतीय बुद्धिजीवी इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि अगर कोई ब्रिटिश इस संस्था की स्थापना से संबद्ध हो जाता है तो यह संस्था सरकार के प्रकोप से बची रहेंगी।

कुल मिलाकर निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किसी षड्यंत्र का परिणाम नहीं था एवं न ही यह मुठ्ठी भर बुद्धिजीवियों के बौद्धिक विलास की उपज था बल्कि वह क्षेत्रीय संस्थाओं के, जिनकी स्थापना 19वीं सदी से ही आरम्भ हो गई थी, क्रमिक विकास का परिणाम था। कांग्रेस की सफलता या विफलता और बाद के वर्षों में उसके चरित्र का निर्धारण बजाय इसके कि उसकी स्थापना किन लोगों ने की, इससे किया जाना चाहिए कि अपनी स्थापना के शुरूआती वर्षों में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में वह कहाँ तक सफल रही।

कांग्रेस के प्रति विभिन्न वर्गों का रवैया

कांग्रेस ने स्थापना काल से ही एक अखिल भारतीय पहचान स्थापित कर ली। कांग्रेस के आदर्शों ने भारत के विभिन्न वर्गों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव उत्पन्न किये। इसी तरह उत्पन्न प्रभावों के आलोक में उनकी प्रतिक्रिया भी भिन्न-भिन्न रही।

कांग्रेस की स्थापना परम्परागत सामंती वर्ग के बचे-खुचे लोग तथा नए जमींदार चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमानों के उस राजनीतिक व्यवस्था के लिए खतरे के रूप थी जिसको उसने पाला-पोसा था। इसलिए कांग्रेस के जन्म से ही उन कुलीनों के सामने अव्यवस्थित और अनिश्चित् भविष्य का एक चित्र उभरकर आया। परिणामतः यह वर्ग ब्रिटिश शासन का और समर्थक बन गया। कांग्रेस की स्थापना के संदर्भ में व्यापारिक वर्ग की नीति दीर्घकालिक थी, क्योंकि व्यापारी वर्ग की जरूरतें तात्कालिक तथा स्थाई दोनों थीं। ज्यों-ज्यों यह वर्ग अपनी स्थाई आवश्यकताओं के बारे में जागरूक होता गया और यह देखने लगा कि किस प्रकार ब्रिटिश शासन उसके हितों में बाध पहुँचा रही है, त्यों-त्यों वह कांग्रेस का समर्थक बनता गया क्योंकि कांग्रेस के नेता भारतीय पूंजी के संरक्षण की बात करते थे। भारत की सामान्य जनता उस समय निरक्षर थी। अतः वह कांग्रेस की स्थापना के समय प्रतिक्रिया जताने में असमर्थ थी। प्रारम्भिक समय में कांग्रेस के संकुचित जनाधार का यही कारण था, परन्तु आगे जैसे ही कांग्रेस ने उनकी समस्या के प्रति रूचि दिखाई भारत की सामान्य जनता अपने आप उससे जुड़ती चली गई।

DOWNLOAD APPLICATION

for

HISTORY OPTIONAL COURSE (UPSC/PCS)

Separate Batches for Both

HINDI AND ENGLISH MEDIUM

GET IT ON Google Play

Manikant Singh

App Features

- Complete History Optional Course (for both Medium)
- Weekly Live doubt classes
- Modules wise Courses Available
- Printed Study Material Sent to Home via Post
- Free Weekly/Monthly Test
- Free Demo Videos
- Daily Translated Article of The Hindu, Indian Express etc.

OUR BATCHES

- Offline Batch
- Online Live Batch
- Audio-Visual Course
- Online Recorded Class
- Pen Drive Course

- Answer Enrichment Course
- Annual Practice Test Series

To download Our Application

Our website QR Code

OUR MAINS TEST SERIES PROGRAMME

UPSC | UPPCS | BPSC

Follow us: YouTube

TS PUBLICATIONS

210, Virat Bhawan, IInd Floor, Near Post Office, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9

: 7683076934, 9999516388, 8287331431, 011-35009789 9999278966

: info@thestudyias.net • thestudyias@gmail.com

978-81-957117-9-6

9 788195 711796